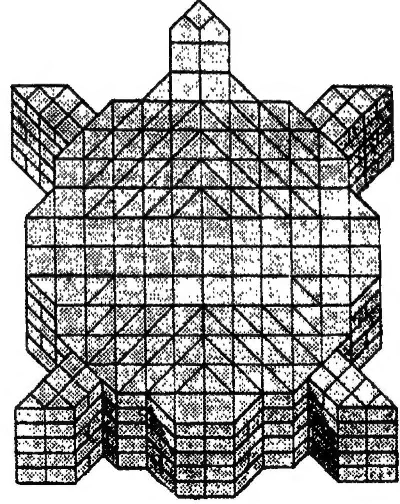
नाप जोखकर वेदियां बनाना



रामकृष्ण भट्टाचार्य

पुरोहित यह तय करते थे कि यजमान के लिए किस तरह की यज्ञ वेदी बनानी है। फिर कारीगर अपने गणित और औज़ारों की मदद से पुरोहितों की मांग के हिसाब से किस्म-किस्म की ईंटें बनाने में जुट जाते थे। इन्हीं ईंटों से नियम-कायदों का पालन करते हुए कारीगरों को वेदी बनानी होती थी।

शुल्व सूत्र का अध्ययन करते हुए ज्यामिति की उत्पत्ति की खोज बीन करने का अच्छा मौका मिलता है। दरअसल ज्यामिति की शुरुआत कतिपय मूल तत्वों या स्वयं सिद्ध कथनों से नहीं हुई थी – यूनान में भी इस तरह के निश्चित तत्व तो काफी बाद में विकसित हुए थे। शुरुआत तो हुई थी वेदियों के निर्माण में आने वाली कुछ दिक्कतों को सुलझाने के प्रयासों से। पुरोहितों ने कुछ संपन्न यजमानों के दिमाग में ये बात बैठा दी थी कि यदि वे बाज़ (श्येन) की आकृति वाली वेदी बनाकर यज्ञ करेंगे तो वे निश्चित तौर पर स्वर्ग में जाएंगे। ऐसा क्यों? पुरोहितों का जवाब था

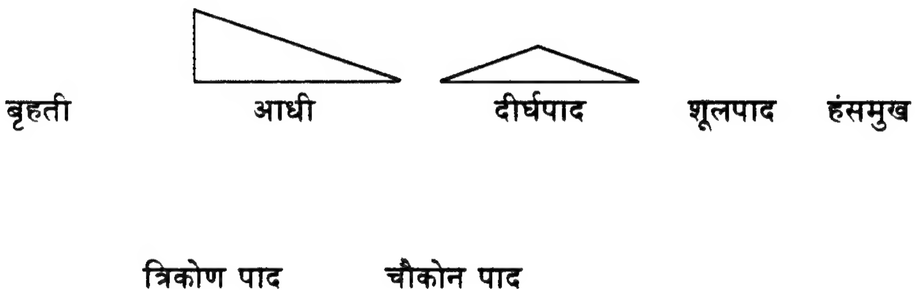
कि "पक्षियों में श्येन ही सर्वोत्तम उड़ान भरता है; अतः यजमान स्वयं श्येन बनकर उड़ान भरे, तो अवश्य ही उड़कर स्वर्ग में पहुंच जाएगा।" (तैत्रीय संहिता, 5. 4. 11)।

यहां तक तो ठीक है। परंतु इस तरह श्येनाकार वेदी बनाना कोई आसान काम नहीं था। और इस वेदी के लिए कुछ कठोर नियम भी निर्धारित थे: इसमें ईंटों की पांच तहें होना चाहिए, प्रत्येक तह के अपने-अपने विशिष्ट लक्षण होंगे और पूरी वेदी घुटने की ऊंचाई की होनी चाहिए – न कम, न ज़्यादा। और अव्वल तो ईंटें तैयार करने का सवाल था। ये सारी ईंटें आज की तरह एकरूप नहीं होती थीं। आज तो हम आयताकार ईंटें बनाकर संतुष्ट हो जाते हैं मगर वेदी बनाने के लिए पहले तो तिकोनी, चौकोनी, पंचकोनी वगैरह ईंटें बनानी होती थीं और फिर उन्हें सही तरह से जमाना होता था। इसके लिए हुनर चाहिए और आकार व ढांचों की गहरी समझ चाहिए। अतः कारीगरों की मदद अनिवार्य थी।

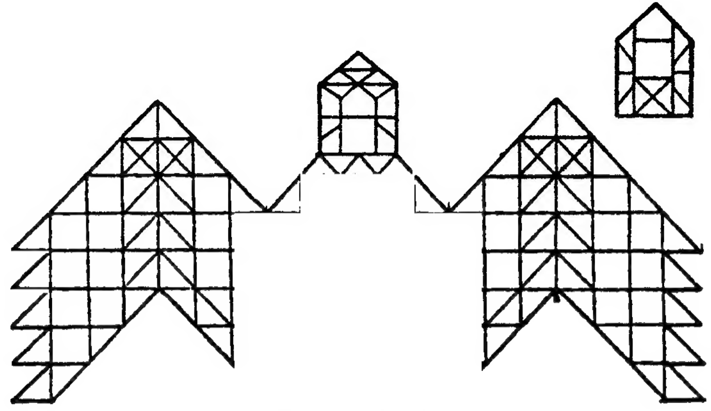
चितियों को बनाना

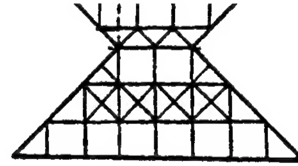
तो सवाल यह है कि प्राचीन भारत में वे कौन-से कारीगर थे जिन्हें अपने कामकाज में ज्यामिति के ज्ञान की ज़रूरत पड़ती थी। जैसा कि हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं, कात्यायन शुल्व सूत्र के टीकाकारों ने शिल्पी और स्थपति का उल्लेख किया है। शिल्पी शब्द का अर्थ होता है कोई भी दस्तकार – कुशल बढ़ई, जौहरी, सुनार या शायद अभिनेता, नर्तक, संगीतकार, चिकित्सक भी इसके दायरे में आ जाते हैं। शुल्व के छात्र निश्चित रूप से इन सबसे तो मदद की गुहार नहीं करेंगे।

विविध किस्म की ईंटें



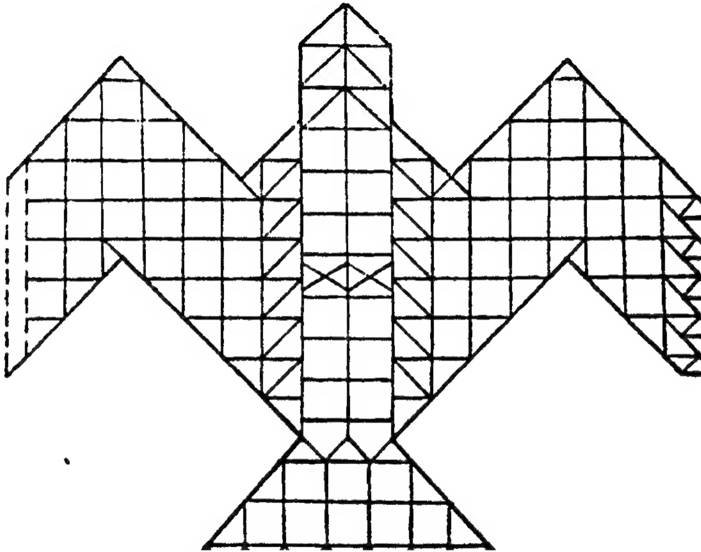
ये ईंटें ज्यामितीय अनुपात के हिसाब से नहीं बनाई गई हैं। यहां इन्हें दिखाने का उद्देश्य मात्र इतना है कि इन ईंटों का आकार कैसा होता था, यह समझ में आ सके।





श्येन चिति की पहली परत: बाज़ के आकार की चिति बनाते समय बाज़ को आत्मा, पंख, शीर्ष, पूंछ आदि हिस्सों में बांट लेते हैं। इस पूरी चिति का क्षेत्रफल पहले ही गणना कर मालूम कर लिया जाता था। यहां दिखाई गई श्येन चिति का कुल क्षेत्रफल 108000 अंगुल या 7.5 पुरुष है।

चिति की पहली परत को बनाने में 69 चतुर्थी, 1 हंसमुखी, 72 आर्धा, 52 त्रिकोण पाद और 6 चौकोन पाद किस्म की ईंटों का इस्तेमाल किया गया है। चिति की इस परत को बनाने में कुल 200 ईंटें उपयोग में लाई गईं हैं।



श्येन चिति की दूसरी परत: चिति की इस परत को बनाने में 68 चतुर्थी, 6 हंसमुखी, 70 आधी और 56 त्रिकोण पाद किस्म की ईंटों का इस्तेमाल किया गया है। यहां भी ईंटों का कुल जोड़ 200 ही है।

हम मान सकते हैं कि शुल्व छात्र के लिए इनमें से चार तरह के दस्तकार उपयुक्त व उपयोगी होंगे: ईंट बनाने वाले, मिस्त्री, रथ बनाने वाले और बढ़ई।

प्रथम दो की उपयोगिता तो स्वत: स्पष्ट है। जब तक पुरोहित के पास विशिष्ट किस्म की ईंटें बनवाने और उन्हें उठवाकर सही तरह से जमवाने की व्यवस्था न हो, और जब तक एक प्रभावशाली चिति न बने, तब तक यजमान को यह यकीन कैसे दिलाया जा सकता है कि इसकी मदद से वह अपने शत्रुओं को परास्त कर सकेगा या अपने पुरखों की दुनिया में स्थान पा सकेगा? (शत्रुओं को परास्त करने के लिए प्रउग, उभयत: प्रउग तथा रथचक्र चिति का प्रावधान है, जबकि पुरखों की दुनिया में स्थान सुनिश्चित करने के लिए आइसोसेलस ट्रैपीज़ियम आकार की श्मशान चिति की सिफारिश की जाती है।)

ईंट बनाना भी कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए मिट्टी तैयार करना पड़ता है, भट्टी बनानी होती है और तापमान को नियंत्रित करना होता है। श्येन चिति में ईंटों की पांच तहें होती हैं और प्रत्येक तह में 200 ईंटें लगाई जाती हैं। सामान्य आकार-प्रकार की ईंटों के अलावा विशेष किस्म की ईंटें भी होती हैं जिनके नाम भी विचित्र होते हैं: मसलन हंसमुखी, शूलपाद्या, चतुर्थी, अष्टमी वगैरह। इस बात का भी ख्याल रखना होता है कि ईंटें कम-ज़्यादा न पक जाएं। ईंट बनाते हुए इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि सूखने व भट्टे में पकाने के दौरान उनकी साइज़ थोड़ी घट जाएगी। लिहाज़ा यज्ञ के अनुष्ठान में ईंट बनाने वाले और मिस्त्री की उपस्थिति तो अनिवार्य लगती है। इस संदर्भ में गौरतलब है कि भारत में ईंट बनाने की कला बहुत पुराने ज़माने से मौजूद रही है। (उत्तर व उत्तर-पश्चिमी भारत में वैदिक पूर्व सभ्यता की शहरी बस्तियों के मकान व अन्य सभी इमारतें ईंटों की बनी थीं) अत: यह कोई अचरज की बात नहीं है कि बाद के काल में भी यहां ईंट बनाने व जुड़ाई के मामले में अच्छी कुशलता उपलब्ध रही। जब बाद में खानाबदोश 'आर्य' यहां बसे और उन्होंने अपने नए कर्मकाण्ड विकसित किए तो उन्होंने अपने अतीत की कई चीज़ें तो जारी रखीं ही, साथ में कई नई बातें भी अपनाईं। सोमयज्ञों में ईंटों का उपयोग इसी तरह का एक नवाचार था।

बहरहाल, रथ निर्माता और बढ़ई (सूत्रधार) की उपस्थिति की वजह शायद इतनी स्वत: स्पष्ट नहीं है। हड़प्पा काल से ही हमें खिलौना गाड़ी मिलती है; उस समय पहिया बनाना व उपयोग करना आम बात थी। वैदिक लोग भी घोड़े से चलने वाले रथ और गाड़ियां बनाते थे। ऋग्वेद में रथ शब्द का प्रयोग

कई मर्तबा हुआ है। दरअसल रथ निर्माता को बढ़ई से अलग एक समूह इसलिए माना गया क्योंकि वह विशेषज्ञ होता था जबकि बढ़ई को विविध कार्यों में लगाया जा सकता था। इसलिए रथकार व तक्षन को अलग से प्रणाम करने का उल्लेख मिलता है।[1]

रथ निर्माता और बढ़ई दोनों ही अपने कामकाज में मापन के लिए रस्सी का उपयोग करते थे – शुल्व शब्द का यही अर्थ है। (अलबत्ता, यह गौरतलब है कि शुल्व सूत्र की रचनाओं में शुल्व शब्द का प्रयोग मात्र शीर्षकों में ही किया गया है। ग्रंथों के पाठ में प्रचलित शब्द रज्जु का प्रयोग ही देखने को मिलता है।)

तर्क अपने-अपने

यहां हम थोड़ी देर के लिए अपना रास्ता छोड़कर इधर-उधर नज़र डालेंगे। शुल्व के विज्ञान के एक अत्यंत श्रेष्ठ अध्ययन (1932) के लिए हम डॉ. बिभूतिभूषण दास दत्ता (1888-1958) के बहुत ऋणी हैं। उनकी यह रचना उच्च कोटि की है। दत्ता गणित व संस्कृत, दोनों में दक्ष थे (वे डॉक्टर ऑफ साइन्स थे तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में गणित पढ़ाते थे)। शुल्व के बारे में अंग्रेज़ी, फ्रांसिसी व जर्मन में जो कुछ लिखा गया था, वह उन्होंने पढ़ डाला था। शुल्व सूत्रों की मुद्रित रचनाओं से वे संतुष्ट नहीं हुए और शुल्व सूत्र व उनकी टीका की सारी उपलब्ध पाण्डुलिपियों का अध्ययन किया। शुल्व की ज्यामिति के बारे में उनकी पुस्तक आज भी एक प्रतिमान है। इस विषय का कोई भी विद्यार्थी इसे अनदेखा नहीं कर सकता। उनके तरीके पर सवाल करना शायद हिमाकत कहा जाएगा। परंतु पूरी विनम्रता के साथ मैं उनके एक निष्कर्ष के जानिब और उनके प्रस्तुतिकरण को लेकर दो आपत्तियां उठाना चाहता हूं।

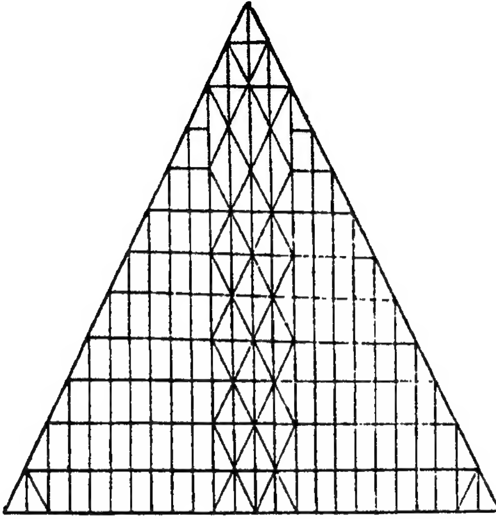
पहले उनका निष्कर्ष। कात्यायन शुल्व सूत्र पर कर्क के भाष्य और महिधर की वृत्ति (संक्षिप्त टिप्पणी) में उल्लेखित जुम्ले सम-सूत्र-निरंचक (एक सी रस्सी खींचने वाला) के बारे में लिखते हुए दत्ता ने कहा था कि इस जुम्ले पर[2] "ज़्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। कारण यह है कि हमें यूनानी दार्शनिक डेमोक्रिटस (लगभग 400 ई. पू.)[3] के लेखन में भी इसी तरह का एक जुम्ला 'हार्पेडोनाप्टे' (रस्सी-खींचने वाले) मिलता है। ऐसा प्रतीत होता कि यह यूनानी ज्यामिति पर हिन्दू प्रभाव का एक उदाहरण है। क्योंकि इस यूनानी जुम्ले में जो विचार है वह न तो यूनानी है, न ज्यामिति में उनके जाने-माने गुरुओं अर्थात् मिस्रियों का है, बल्कि यह तो विशिष्ट रूप से हिन्दू मूल का विचार है। पाली साहित्य में राजा के भूमि सर्वेक्षक के लिए राजुक और रज्जुग्राहक (रस्सी

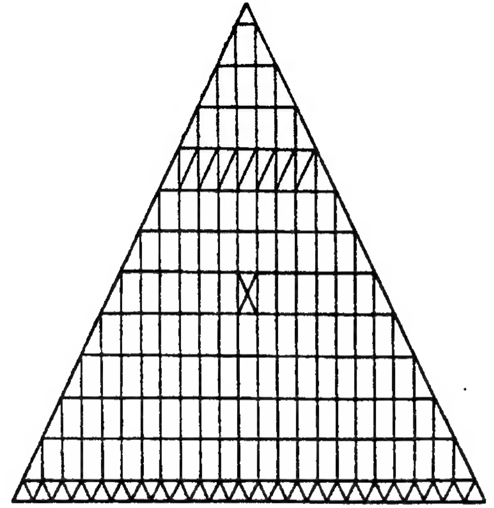
पकड़ने वाले) शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें से प्रथम शब्द (राजुक) सम्राट अशोक (250 ई.पू.) के शिलालेखों में बहुतायत से मिलता है। अपेक्षाकृत बाद के शिल्प शास्त्रों में सर्वेक्षणकर्त्ता को सूत्र-ग्राही या सूत्र-धार के नामों से संबोधित किया गया है और उसे रेखा-ज्ञ (रेखा को जानने वाला) कहा गया है।''[1]

इस उद्धरण का दूसरा वाक्य ऐसा लगता है कि न्यूटन के गति के तीसरे नियम को इतिहास पर लागू करने का उदाहरण है, ''प्रत्येक क्रिया के बराबर किन्तु विपरीत प्रतिक्रिया होती है''। यूरोप के विद्वानों के यूनानमोह के विरुद्ध प्रतिक्रिया देते हुए दत्ता दूसरी अति पर पहुंच गए हैं। इस बात का नाममात्र भी प्रमाण नहीं है कि यूनानी लोगों ने ज्यामिति भारतीयों से सीखी थी। दत्ता ने रस्सी जैसे तुच्छ साधन को ज़रूरत से ज़्यादा महत्व दे दिया है और इसे भू-सर्वेक्षणकर्त्ता का औज़ार मान लिया है। किन्तु सम्राट अशोक के शिलालेखों में राजुक शब्द अधिकारियों के एक वर्ग के लिए प्रयुक्त हुआ है; संभवत: ये ज़िलों के प्रशासक थे, भू-सर्वेक्षणकर्त्ता नहीं।[5] अर्थात् राजुक का मूल अर्थ जो भी रहा हो, मगर अशोक के समय तक इसका भू-सर्वेक्षण से कोई संबंध नहीं रह गया था। और डेमोक्रिटस साफतौर पर 'मिस्र के तथाकथित हार्पे डोनाप्टाई' का ज़िक्र करता है। तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उस यूनानी शब्द (यूनानी में हार्पेडोनाप्टाई या लैटिन में हार्पेडोनाप्टे) में निहित विचार न तो यूनानी है, न मिस्री?

यदि हम यह मान लें कि मेसोपोटेमिया और मिस्र की तरह भारत और यूनान में भी ज्यामिति की उत्पत्ति समांतर व स्वतंत्र रूप से हुई और मात्र एक शब्द 'सम-सूत्र-निरंचक' के आधार पर 'यूनानी ज्यामिति पर हिन्दू प्रभाव' का आग्रह छोड़ दें तो शायद हम ज़्यादा ठोस धरातल पर होंगे। वैसे भी यह शब्द शुल्व सूत्र की किसी रचना में नहीं मिलता। यह शब्द मात्र कर्क और महिधर के भाष्य में मिलता है। ये महिधर 'वेदांतदीप' और 'मंत्र-महोदधाई' के लेखक हैं तथा इनका काल सोलहवीं सदी का है।

दूसरी बात यह है कि शब्द सूत्र-धार (या सूत्र-धर) का अर्थ रस्सी पकड़ने वाला नहीं है जैसा कि मोनिएर मोनिएर – विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेज़ी शब्दकोश में सरसरी तौर पर कह दिया है। इस शब्द का ज़्यादा चलन 'वास्तुविद या बढ़ई' के लिए था। दरअसल वर्तमान शब्द सुतार इसी से बना है। तीसरी बात यह है कि शिल्पशास्त्र की रचनाओं में (कम-से-कम मयमत में) 'सूत्रग्राही' या 'सूत' शब्द का प्रयोग भू-सर्वेक्षण कर्त्ता के


प्रउग चितिः पहली परत


दूसरी परत

प्रउग चितिः यानी त्रिकोण वेदी। प्रउग शब्द का मूल अर्थ है – रथ के डंडे के सामने का हिस्सा, जो आकार में तिकोना होता है। इस चिति की पहली परत को बनाने के लिए 88 बृहती, 112 आधी किस्म की ईंटों का इस्तेमाल किया गया है। एक पूरी ईंट की लंबाई 38 अंगुल 24 तिल है और चौड़ाई 19 अंगुल 12 तिल है। आधी ईंट का आकार एक पूरी ईंट का आधा होता है।

प्रउग चिति की दूसरी परत को बनाने में 114 बृहत ईंटें, 34 आधी, 2 दीर्घपाद, और 50 शूलपाद ईंटों का इस्तेमाल किया गया। खास बात यह है कि इन दोनों परतों को बनाने के लिए हर परत में 200 ईंटों का उपयोग किया गया है।

लिए नहीं बल्कि 'हरफनमौला' के अर्थ में हुआ है।

कारीगर-पुरोहित के काम

आइए अब लौटते हैं अपने मुद्दे यानी बढ़ई पर। यदि हम चितियों के नामों पर गौर करें तो पाते हैं कि उनमें से कम से कम तीन नामों का संबंध रथ (या गाड़ी) से है: प्रउग चिति, जो एक समबाहु त्रिभुज के आकार की होती है; उभयतः प्रउग चिति (दोहरी प्रउग) जो समचतुर्भुज के आकार की होती है; और रथचक्र चिति जो गोल होती है। अर्थात् शुल्व सूत्रों में मानकर चला गया है कि रथ निर्माण का हुनर मौजूद है। अर्थात् कर्क व महिधर ने अपने भाष्यों में कात्यायन शुल्व सूत्र के जिन श्लोकों

को उद्धरित किया है उनमें शिल्पी के अंतर्गत रथकार शामिल हैं।[7]

फिर पुरोहित कहां आते हैं? उनकी भूमिका दो कामों में है – एक तो सोमयज्ञ नामक वैदिक कर्मकाण्डों में अग्नि वेदी की प्रथा को शामिल करवाने में और दूसरे, ऐसी अग्नि वेदियों के निर्माण हेतु नियम-कायदे बनाने में। गौरतलब बात यह है कि शुल्व रचनाएं पारंपरिक सूत्रशैली में और इतने गूढ़ रूप में लिखी गई हैं कि किसी गुरु या भाष्यकार की व्याख्या के बिना इन्हें समझ पाना लगभग असंभव होता है, इसके विपरीत बाद में लिखी गई शिल्पशास्त्र की रचनाएं गैर-ब्राह्मणों (अतः कम महत्वपूर्ण व्यक्तियों) द्वारा लिखी गईं। ये रचनाएं पाणिनी के व्याकरण का पूर्णतः अनुकरण भी नहीं करतीं।

भाषा और औज़ार

शुल्व सूत्रों की संक्षिप्त व सूत्र शैली का कारण जानने के लिए ज़्यादा दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। हमारे पूर्वज हर चीज़ को याद रखने में विश्वास करते थे। वे इन्हें विस्तार में लिपिबद्ध करना नहीं चाहते थे। लंबे-लंबे गद्यांशों की अपेक्षा छोटे-छोटे सूत्रों व पद्यों को याद करना ज़्यादा आसान होता है। इसके अलावा एक फायदा यह भी है कि इस तरह की संक्षिप्तता की बदौलत ज्ञान को ऐरों-गैरों से गुप्त भी रखा जा सकता है। जब तक समझाया न जाए, ये सूत्र अज्ञेय ही रहेंगे।

इस तरह की ब्राह्मणीय शैली के बावजूद शुल्व सूत्र मूलतः कामकाजी हैं। चार रचनाओं में से सबसे प्राचीन व सबसे विस्तृत बौधायन शुल्व सूत्र का आरंभ रैखीय मापन की इकाइयों से होता है और इसके बाद सीधे निर्माण की समस्याओं की चर्चा शुरू हो जाती है: कि एक वर्ग कैसे बनाया जाए। मात्र निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग करने का प्रावधान है:

1. शंकु (खूंटा) और 2. रज्जु। कभी-कभार एक तीसरे उपकरण वेणु (बांस की छड़) का भी उल्लेख है।[8]

जहां तक रज्जु (रस्सी) का सवाल है, भारद्वाज श्रौत सूत्र में स्पष्ट किया गया है कि कौन-सी घास को बटकर रस्सी बनाई जाए: "इसी बर्हि (घास) के तीन या पांच टुकड़ों से वह एक रस्सी बनाए" (1.4.4) "इसी विधि से उसे दर्भ की (जड़ समेत या जड़ के बगैर) पत्तियों की विषम संख्या लेकर उनसे शुल्व (रस्सी) बनानी चाहिए।" (1.5.1) कर्क और महिधर दोनों ही अपने-अपने भाष्य में निम्नलिखित श्लोक का उल्लेख करते हैं: "आचार्य कात्यायन कहते हैं कि मापन रज्जु हमेशा साबुत होनी चाहिए तथा मंजु घास को सन, दर्भ और बल्बजा घास के साथ मिलाकर बनाई जानी चाहिए।"[9]

इसी तरह की हिदायतें शंकु के मामले में भी दी गई हैं "बलि के प्रकरणों में, उपरोक्त गणुधर्मों वाला शंकु (अर्थात लकड़ी के किसी पुराने, गठानमुक्त 12 अंगुल लंबे, 6 अंगुल परिधि वाले लट्ठे से बना) हरी लकड़ी के टुकड़े से बनाया जाना चाहिए। शंकु की लंबाई 9 अंगुल हो। इसकी आधी लंबाई को धरती में गाड़ दें। एक मोगरी (मुद्गर), जो एक ही लकड़ी से बनी हो, वर्गाकार हो, तथा जो शंकु को भलीभांति ज़मीन में धंसा सके, 16 अंगुल लंबी होनी चाहिए। इसका निर्माण लट्ठे के मध्यभाग से प्राप्त लकड़ी से करना चाहिए।"[10]

बांस की छड़ी का इस्तेमाल (रस्सी के साथ) वृत्त खींचने के लिए किया जाता है। बांस की इस छड़ी (वेणु) में तीन सुराख होते हैं, एक-एक सुराख दोनों सिरों पर और एक सुराख केन्द्र में। इसकी मदद से दो अलग-अलग त्रिज्या वाले वृत्त बनाए जा सकते हैं।

इन सबसे एक स्पष्ट निष्कर्ष उभरता है। यदि पुरोहितों से यह उम्मीद थी कि उपरोक्त निर्देशों के मुताबिक वे स्वयं ईंटें बनाने, रस्सियां बनाने, शंकु बनाने, मुद्गर बनाने और बांस की छड़ियां बनाने का काम करेंगे तो लाज़मी होता कि वे सिर्फ मंत्रों को कण्ठस्थ करके उच्चारित करने में ही नहीं बल्कि हस्तकला में दक्ष हों। इस संदर्भ में महाभारत के आदिपर्व में जनमेजय के सर्पसत्र (नाग यज्ञ) के प्रसंग से पता चलता है कि सारे पुरोहितों के सम्मिलित ज्ञान की अपेक्षा एक कुशल कारीगर यज्ञ की बारीकियों को ज़्यादा जानता है।"[11]

देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय कहते हैं, "वैदिक संस्कृति का कोई अनुरागी कह सकता है कि शायद कुछ पुरोहितों में, ईंट बनाने व बिछाने की सैद्धांतिक ज़रूरतों से प्रेरित होकर इन कामों में दिलचस्पी उत्पन्न हुई होगी और इस तरह से उन्होंने शुल्व-गणित के विकास में योगदान दिया होगा। अलबत्ता इस संकल्पना (को स्वीकार करने) से पहले यह स्वीकार करना होगा कि यह काम वे पुरोहितों की हैसियत से नहीं बल्कि तकनीशियन व दस्तकार की हैसियत से ही कर पाए होंगे। इसके लिए उन्हें धर्मशास्त्र की उन परिपाटियों का उल्लंघन करना पड़ा होगा जो शारीरिक श्रमिक को हिकारत की नज़र से देखती ।"[12]

ईंटों की जगह छंदवेदियां

इस तरह की अग्नि चितियों के निर्माण में लगने वाली शारीरिक मेहनत से बचने के लिए वैदिक पुरोहित कभी-कभी एक सरल रास्ता अपनाते थे; चिति का निर्माण असली ईंटों की बजाए छंदों से कर लेते थे। मसलन तैत्रीय संहिता में कहा गया है: "जिसे गोधन की इच्छा है, वह छंदश्चित की

थप्पियां लगाए; छंद ही गाएं हैं और वह गायों से मालामाल हो जाएगा।" (5.2.11.1) बौधायन शुल्व सूत्र में भी सलाह दी गई है: "तीन हज़ार ईंटों की अग्नि निर्मित करने के पश्चात् यजमान छंदश्चित का निर्माण करे" (2.81)[13] थिबाट इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं: "छंदाश्चित वह अग्नि है जो इस्तक (ईंटों) की बजाए मंत्रों से बनाई गई है। अग्नि की आकृति ज़मीन पर खींच दी जाती थी और उसके बाद अग्निचयन का पूरा अनुष्ठान किया जाता; किन्तु वास्तविक ईंटें रखने की बजाए पुरोहित धरती पर इन स्थानों को स्पर्श करता जहां ईंट रखी जानी चाहिए और साथ में उपयुक्त मंत्र पढ़ देता।" बौधायन यह भी कहते हैं कि छंदश्चित का आकार बाज़ (श्येन) के समान होता है क्योंकि श्येनचिति में समस्त चितियों का समावेश है।

आगे चलकर तो छंदश्चित का स्थान भी मनोनय या मनश्चित ने ले लिया। बादरायण के ब्रह्मसूत्र में कई तरह की वैचारिक अथवा ख्याली अग्नियों का उल्लेख है (3.3.44.-52)। (ब्रह्मसूत्र वेदांत की विभिन्न शाखाओं का मूल ग्रंथ है।) लेकिन उपनिषद् के ऋषियों को तो छंद रूपी ईंटों या मात्र ख्याली ईंटों से नहीं बल्कि गारे-मिट्टी की बनी सचमुच की ईंटों से काम करना पड़ता था। मृत्यु के देव यम नचिकता से कहते हैं: "ओ नचिकेता, स्वर्ग के लिए अनूकूल अग्नि के विषय में अपने ज्ञान के आधार पर, मैं तुम्हें इसके बारे में बताता हूं।" और कठोपनिष्द में कहा गया है: "मृत्यु ने उसे विश्व के स्रोत अग्नि के विषय में, ईंटों के प्रकार व संख्या के विषय में (या इष्टका यावतीर्वा यथावा) बताया और यह भी बताया कि अग्नि के लिए इन्हें किस तरह जमाया जाना चाहिए। और उसने (नचिकेता ने) इन्हें समझते हुए शब्दश: दोहराया।" (1.1.14-15) परंतु जब हम वेदांतवाद पर आते हैं तो अग्नि चिति से संबंधित हर चीज़ विचारों में सिमट जाती है, वास्तविक ईंटों की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। ब्रह्मसूत्र में कहा गया है:

"सूचक चिन्हों (लिंग) के प्राचुर्य के चलते (मस्तिष्क, वाणी, अग्नि-रहस्य आदि की) अग्नि का किसी कर्मकाण्ड में कोई स्थान नहीं है क्योंकि ये चिन्ह संदर्भ से ज़्यादा शक्तिशाली हैं। (यह बात जैमिनी ने भी कही थी)

संदर्भ की शक्ति से, वैचारिक अग्नि का उपयोग पूर्व में निर्देशित वास्तविक अग्नि के विकल्प के रूप में किया जाना चाहिए। इनमें (सोम रस के) काल्पनिक पान जैसी कुछ रीतियां शामिल हैं।" (3.3.44-45) इस निर्देश के समर्थन में कुछ नज़ीरें आदि भी प्रस्तुत की गई हैं। (3.3.46-49)

बहरहाल, शुल्व सूत्र तो वास्तविक, ठोस ईंटों से बंधे हैं और उन्हें इनके माप वगैरह देने ही होते हैं। ये माप इत्यादि इनसे संबंधित मंत्रों के रहस्यों से स्वतंत्र हैं। अगले खण्ड में हम इनको इसी स्वतंत्र रूप में देखेंगे।[14]

रामकृष्ण भट्टाचार्य: आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

अनुवाद: सुशील जोशी। एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम एवं स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

फुटनोट एवं संदर्भ ग्रंथ:

1. जियोमेट्री एकोरडिंग टू शुल्व सूत्र, आर. पी. कुलकर्णी; प्रकाशक: वैदिक संशोधन मंडल, पुणे, 1983, पृष्ठ 13-14
2. 'शुल्व सूत्र ऑफ कात्यायन', कर्क और वृति महिधर का भाष्य के साथ। संपादन पं. गोपाल शास्त्री नेने, बनारस। प्रकाशक: द चौखंबा संस्कृत सीरिज़ ऑफिस, 1936, पृष्ठ 36 (खंड 2) और पृष्ठ 38 (खंड 1)
   कात्यायन शुल्व सूत्र, एम. डी. खांडेकर, प्रकाशक: वैदिक संशोधन मंडल, पुणे, 1974
3. लेख के भाग-1 में डेमोक्रेटस के संवाद के दौरान स्रोत का ज़िक्र किया गया है।
4. द साइंस ऑफ द शुल्व; विभूति भूषण दत्त, प्रकाशक: कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1932, (1991 पुन: मुद्रित) पृष्ठ 9
5. देखिए, इंसक्रिप्शन ऑफ अशोक; डी. सी. सरकार, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1975, पृष्ठ 75
6. कर्क के खंड 29 मे उद्धरण "जो इनसे बड़े नापों के बारे में जानकारी चाहता हो वह किसी सुनार या इंजीनियर से संपर्क करे।" खांडिलकर द्वारा अंग्रेज़ी में अनुदित पुस्तक का नोट-2, पृष्ट 37 भी देखें। नोट-3 पृष्ठ 44
7. माडर्न रिव्यू; गंगानाथ झा, 1934, हिन्दू आर्किटेक्चर, को पी. के. आचार्य, पृष्ठ 426, 427 और 435 में जैसा उद्धरित किया है।
8. बौधायन शुल्व सूत्र, अंग्रेज़ी अनुवाद एवं संपादन, जी. थिबाट, प्रकाशक: द रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ एंशिएंट साइंटिफिक स्टडीज़, नई दिल्ली, 1968, खंड 2, 52-57 एवं पृष्ठ 95-96
9. कर्क द्वारा उद्धरित, श्लोक, बनारस संस्करण (नोट-3) खंड 13 सी डी, 14 ए बी, खांडिलकर द्वारा संपादित, खंड 14, पृष्ठ 42
10. देखिए कर्क वी. वी. 9, 11 ए बी, (नेने पृष्ठ 36), खांडिलकर द्वारा संपादित, पृष्ठ 41
11. इसका उल्लेख हम संबंधित खंड में पहले ही कर चुके हैं।
12. मैथेमेटिक्स इन द मेकिंग इन ऐंशिएंट इंडिया, जी. थिबाट, की किताब में देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय द्वारा लिखी गई भूमिका, प्रकाशक: के. पी. बागची एंड कम्पनी, कलकत्ता, 1984, पृष्ठ 8
13. उपरोक्त, पृष्ठ 96 बौधायन शुल्व सूत्र, 2.81, 2.83
14. देखिए, बौधायन शुल्व सूत्र 3.10, मानवीय एवं दैवी खंड से।